International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 181-183

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 181-183
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 16-09-2016
Accepted: 17-10-2016

डॉ. ज्वाला प्रसाद
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

Correspondence
डॉ. ज्वाला प्रसाद
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

राधावल्लभ रचित लघुकथा "परावर्तनम्" की समीक्षा

डॉ. ज्वाला प्रसाद

लघुकथा संग्रह 'स्मितरेखा' की चौथी कथा- परावर्तनम् है। इस कथा में आचार्य त्रिपाठी ने मठ आश्रम की प्राचीन व्यवस्था एवं रहन-सहन को प्रदर्शित किया है। क्या ईष्या, द्वेष जैसे भावों ने कभी किसी को छोड़ा है? चाहे वह शिक्षक हो या स्वजन सभी ईष्या, द्वेष से ग्रसित है। यहाँ मानव मन की उन प्रवृत्तियों का सामयिक युगबोध के साथ चित्रांकन है जिनमें एक ओर समकालिकों के बीच प्रतिस्पर्धा से जन्म लेती है शत्रुता- हर समय और हर स्थान पर। सच्चरित्र उस प्रतिस्पर्धा का सकारात्मक उपयोग करता है किन्तु दुष्टचित्त अपने नकारात्मक स्वभाव से दूसरों को हानि पहुँचाता है और कभी-कभी उसका शिकार वह स्वयं भी बन जाता है। अपने को गुरुजी के सामीप्य पाने के लिए एवं उनका उत्तराधिकारी बनने के लिए मुरारीलाल कृष्णनाथ से वैर रखता था परन्तु कालान्तर में जब वह खतरा टल गया और वही प्रतिद्वन्द्वी एक अलग भूमिका में उनकी मठ की सहायता करने के लिए उपस्थिति होता है तो वह उसे किसी वी.आई.पी. से कम नहीं आँकता। कृष्णनाथ भी सारी कटुता को भुलाकर उस मठ एवं विद्यालय की प्रोन्नति हेतु कटिबद्ध दिखता है जिसने उसे शरण देने के साथ ही विद्या एवं संस्कार देकर उसे उस मुकाम तक पहुँचाने में प्रत्यक्ष रूप से मदद की थी। इस प्रकार कथानायक को यहाँ कृतज्ञ के रूप में चित्रित किया गया है। नौकरी मिलने के बाद मठ के अन्तेवासियों चाहे विद्यार्थी हो चाहे शिक्षक सभी ने जो स्नेहभाव दिखाया एवं उनके जाते समय अपने लिए जो अपेक्षाएं जताई वे अत्यन्त स्वाभाविक और भावनात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं।

कथानक

कथा का नायक कृष्णनाथ अपने अनुचर के साथ दिल्ली से श्रीपतिपुर जा रहा है, जहाँ उसने श्रीरामसंस्कृत पाठशाला में रहकर सम्पूर्ण शिक्षा पूरी की थी। वह उसी विद्यालय के निरीक्षण हेतु जा रहा है। रास्ते में ही उसे आश्रम में बीती सारी घटनाएँ रह-रह कर याद आ रही है कि कैसे एक गुरुजी गालियाँ देते थे और उनकी सबसे भद्दी गाली 'तिष्ठन्मूत्रयिता' थी। कथा नायक वह दिन आज तक नहीं भूला जब वह बीस साल पहले नौकरी के लिए साक्षात्कार देने के लिए दिल्ली आया और वापस जाते समय सामान्य श्रेणी में यात्रा करते हुए उसने अत्यधिक भीड़ के कारण वातायन से ही मूत्रविसर्जन कर दिया और जब यह बात आश्रम में पता चली तो कृष्णनाथ से द्वेष रखने वाले मुरारिलाल आदि के कहने पर उसे प्राश्चित्त के रूप में दो महीने तक प्रतिदिन एक गिलास गो-मूत्र पीना पड़ा और अन्य भी मानसिक यातनाएँ सहनी पड़ी। इस प्राश्चित्त समय के अन्तिम दिनों में उसका नियुक्ति-पत्र दिल्ली से आया, तो पूरे आश्रम में उत्सव का वातावरण हो गया। आज वह संस्थान के उच्च पद पर है और अपने आश्रम को नियमित अनुदान दिलाता है, कुछ वित्तीय अनियमितताओं की शिकायत मिलने पर वह आश्रम के निरीक्षण करने श्रीपतिपुर जा रहा है। जहाँ विद्यार्थी काल में उससे द्वेष भाव रखने वाला मुरारिलाल ही अब प्राचार्य है। निरीक्षणानन्तर जब उसे लघुशङ्का लगती है और वह देखता है कि अब आश्रम में खड़े होकर लघुशङ्का करने का स्थान बना है। उसे यह सोचकर हंसी आती है, कि इसी स्थान पर उसे खड़ा होकर पेशाब करने पर इतनी बड़ी सजा मिली थी। इसी कारण इस कथा का अन्वर्थ नाम 'परावर्तनम्' रखा है।

भाषा शैली

लेखक की भाषा अतिमधुर है और प्रसादगुण से परिपूर्ण है। श्लेष आदि चमत्कारिता का बोझ न लिए हुए वैदर्भी शैली में निबद्ध यह कथा सहृदय को हास्य रस में निमज्जित कर देती है। इस कथा में लेखक ने दो छन्दों का प्रयोग अति विशिष्टता के साथ किया है प्रथम तो जब कथा नायक को ट्रेन की खिड़की से ही लघुशङ्का कर देने के लिए प्रायश्चित्त रूप दण्ड मिलता है तब कविसुत उपाधि वाले साहित्याचार्य के छात्र कलानिधि ने कृष्णनाथ की यात्रा के विषय में एक कविता बनाई और कृष्णनाथ के सामने सभी छात्रों को बार-बार सुनाई। वह कविता उस समय नायक को बहुत बुरी लगती थी पर उसका एक पद्य से रह-रहकर याद आता है कि-

स्मेराननास्तं तरुणा अपश्यन्
नारीजनो नम्रमुखं लुलोके।
क्रोधेन वृद्धाः कुतुकात् तरुण्य-
स्तं मूत्रमाणं ददृशुर्जनास्ते।।[1]

वैदर्भी शैली में इन्द्रवज्रा छन्द का सुष्ठु प्रयोग लेखक ने किया है। पद्य पढ़ते ही हास्य की धारा फूट पड़ती है। पुनः इसी कविसुत ने कृष्णनाथ के सौप्रस्थानिक के अवसर पर एक और कविता गाई गई जिसका प्रथम पद्य नायक स्मरण करता है-

दिल्ली प्रयाते त्वयि कृष्णनाथे
सर्वे सखायः स्युरिमे त्वनाथाः।
गोपा यथा कृष्णमिव स्मरन्तः,
सन्तस्त्वदीया इह ते वसन्तः।।[2]

यह पद्य भी इन्द्रवज्रा छन्द में है। यद्यपि लेखक उत्कृष्ट कवि है पर प्रकरणानुरोध से किसी नवशिक्षित कवि की भाषा में ही एक साधारण सी उपमा के साथ पद्य रच दिया है। लेखक ने एक और पद्य का प्रयोग इस कथा में किया है, जो संभवतः हिन्दी के कवि रहीम के किसी दोहे का संस्कृत अनुवाद है-

वदति रहीमस्तूष्णी स्थेयं दृष्ट्वा विपर्ययं काले।
आगवमात्रे दिवसे शुभे तु सर्वं शुभं भविता।[3]

लेखक ने इस कथा में हिन्दी के प्रसिद्ध मुहावरे 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' का संस्कृत में अनुवाद करके सम्यक् प्रयोग किया है।[4]

अलङ्कार

संस्कृत भाषा शब्द निर्मात्री भाषा है और कवि त्रिपाठी ने शब्दों का सामंजस्य ऐसे किया है कि उनकी कथाओं में अनुप्रास और यमक स्वतः बन जाते हैं। जैसे-

यमक- 'किं कथयामि ऐश्वर्यसदनदेहलीं देहलीमधिकृत्य?' [5] स्वस्खलितं स्खलिताक्षरं पुनः पृच्छा। [6]

अनुप्रास- 'चिन्ताचर्चितचित्तश्चषकमादाय गोशालामधावत्।'[7] यहाँ चकार की आवृत्ति अनुप्रास बनाती है। उपमा उत्प्रेक्षा को प्रयोग कवि बहुतायतता में करता है। जैसे-

उपमा- 'कृष्णनाथस्तदानीं त्रुटितसूत्रं पतङ्गमिव उत्खातप्रति रोप्यमाणः सहकार पादप इव स्वात्मानममन्यत।'[8]

'विचलितो विषण्णः कशाभिर्भृशं ताडितो वल्गया धारितो वाजीव आलानबद्धोऽस्नाथः करीवोन्मनाः कृष्णनाथो मनस्येवमकरोत्।'[9]

यहाँ यात्रा का सहज वर्णन है। अनारक्षित बोगियों में प्रवेश के समय उमड़ती भीड़ का दृश्य पाठकों को कुछ समय के लिए उसी भीड़ के मध्य खड़ा कर देता है। कथोपकथन रोचक है और कथोचित भी, पर शैली उपन्यास जैसी है। लेखक में कहीं भी कथा को समाप्त करने की त्वरा नहीं दिखती। इसलिए ये कथाएं अपेक्षाकृत बड़ी हैं जिसे दीर्घकथा कहा जा सकता है। भावपक्ष ही नहीं इस कथा का कलापक्ष भी प्रभावित करता है। अनुप्रास के सोद्देश्य प्रयोग कहीं भी बोझिल नहीं लगते। जैसे गुरु सीताचरण के सितासिताचरण (सित - असित - आचरण) या और कुछ। प्रांतीय लोकोक्ति एवं मुहावरों का संस्कृतीकरण भी प्रभावित करते हैं। इस पूरी कथा में भाषा एवं भाव लेखक के गम्भीर युगबोध से नियन्त्रित दिखते हैं।

सम्प्रेषण

आचार्य त्रिपाठी की सम्प्रेषण शक्ति अति विशिष्ट है जब वह किसी स्थिति का वर्णन करते हैं तो पाठक भी उसी स्थिति में जीने लगता है। जैसे कृष्णनाथ की दिल्ली से सामान्य श्रेणी द्वारा श्रीपतिपुर लौटने का वर्णन के समय ऐसा लगता है मानो उसी डिब्बे में पाठक भी यात्रा कर रहा हो जब उसे खिड़की में से लघुशङ्का करने के लिए लोग उकसाते हैं वह वर्णन अति सजीव बन गया है। जैसे-

एवं उभाभ्यां प्रोत्साहितोऽहं कथञ्चित् वातायनसन्निकृष्टोऽभवम् अवदश्च ..... सत्यमेव बलवता मूत्रवेगेन बाधित आसीत् तपस्वीति। [10]

इस प्रसंग को पढ़कर कोई भी पाठक अपनी हँसी को नहीं रोक सकता। पुनः यात्रावृत्तान्त को सुनकर गुरुकुल में होने वाला द्वेषी छात्रों का व्यवहार और आचार्य का क्रोधित होना अत्यन्त स्वाभाविक लगता है। पुनः प्राश्यचित्त निर्धारण सभा में पक्ष-विपक्ष बनाकर छात्रों का शास्त्रार्थ कुछ द्वेषी छात्र कृष्णनाथ को दण्ड दिलाने को कटिबद्ध है तो कुछ कृष्णनाथ के मित्र उनकी चालों को काटने में। पुनः कृष्णनाथ का बाल्यकाल में श्रीराम के मंदिर में रहते हुए श्रीराम के विग्रह से 'बन्धो राम' कहकर बात-चीत करना बाल सुलभ अज्ञानता का दृश्य खींचते है। तो दूसरी ओर कृष्णनाथ का नियुक्तिपत्र आने पर आश्रम में उत्सव का वातावरण होना और द्वेषी मुरारिलाल आदि का क्षमा माँगना। कुछ लघुब्रह्मचारियों द्वारा पहले ही जाकर रेल में सीट रोकना आदि आश्रम में होने वाले द्वेषी भाव और बन्धुभाव को अच्छी तरह चित्रित करता है।

कृष्णनाथ के साथ आये अनुचर के द्वारा कृष्णनाथ की बात-बात में प्रशंसा और हाँ में हाँ मिलाना चाटुकारों के चरित्र दिखाता है। तिष्ठन्मूत्रयिता को जघन्य अपराध मानने वाले गुरु कल्याणमिश्र का तर्क कृष्णनाथ के पक्ष में जाता हुआ एक ऐसे गुरु की कल्पना खींचता

है जो अपने सिद्धान्त पर स्थिर रहते हुए भी उसका बचाव करता है। जैसे- 'गच्छन्न मूत्रयेत् तिष्ठन्न मूत्रयेदितिवादिमिर्मन्वादिभिः यानत्वविशिष्टगतित्वावच्छिन्न- मूत्रविसर्जनाय न तावत् प्राश्चित्तव्यवस्था कृता।'[11]

संदर्भ सूची

1. स्मितरेखा, पृ. 62
2. स्मितरेखा, पृ. 67
3. स्मितरेखा, पृ. 64
4. तहि मठान्निष्कासितो रजक श्वाइव इतो भ्रष्टस्ततो नष्टः स्यामिति विचार्य तूष्णीं तस्थौ तदानीम्। - स्मितरेखा, पृ. 61
5. स्मितरेखा, पृ. 51
6. स्मितरेखा, पृ. 51
7. स्मितरेखा, पृ. 58
8. स्मितरेखा, पृ. 69
9. स्मितरेखा, पृ. 69
10. स्मितरेखा, पृ. 46
11. स्मितरेखा, पृ. 60